दूसरा अध्याय

।। दिव्य सारांश ।।

अध्याय 2 के श्लोक 1 से 3 में वर्णन है कि दुःखी व रोते हुए अर्जुन को देख कर श्री कष्ण के शरीर में प्रवेश ''काल'' (ब्रह्म) ने कहा कि इस अवसर पर आपका कायरता दिखाना न तो स्वर्ग प्राप्ति है, न कीर्ति प्राप्ति है तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों का काम नहीं है। इसलिए हे अर्जुन नपुसंकता को त्याग कर युद्ध के लिए तैयार हो जा।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 4 से 6 में अर्जुन कह रहा है कि भगवन अपने पूजनीय बड़ों (द्रोणाचार्य, धतराष्ट्र) व बन्धुओं को मार कर पाप का भागी होने से अच्छा तो हम भिक्षा का अन्न खाना उचित समझते हैं और इस रक्त से युक्त राज को भोग कर तो पाप ही प्राप्त करेंगे। फिर न जाने कौन मरे और कौन बचे?*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 7 से 9 में अर्जुन कहता है मैं आपका शिष्य हूँ तथा आपकी शरण में हूँ। मेरी बुद्धि काम करना बन्द कर चुकी है। जो मेरे हित में हो वही सलाह (राय) दीजिए। यदि मुझे कोई सारी पथ्वी का राज्य प्रदान करे तथा देवताओं के स्वामी अर्थात् इन्द्र का शासन भी प्रदान करे तो भी युद्ध करके पाप का भार सिर पर रखना नहीं चाहूंगा अर्थात् मुझे कोई कितना ही लालच दे, परंतु मैं नहीं देखता हूँ कि आपकी कोई शिक्षा मुझे शोक मुक्त कर देगी अर्थात् युद्ध के लिए तैयार कर देगी। (मैं युद्ध नहीं करूंगा।) इस प्रकार यह कह कर अर्जुन चुप हो कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।*

''गीता ज्ञान बोलने वाले के भी जन्म-मत्यु होते हैं''

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 10 से 16 में वर्णन है कि अर्जुन को दुःख में ग्रस्त देख कर मुस्कराते हुए भगवान बोले कि हे अर्जुन शोक न करने वाली बात का शोक कर रहा है तथा ज्ञान कह रहा है पंडितों जैसा। विद्धान लोग मरने जीने की चिंता नहीं करते। यह नहीं है कि हम तुम और ये सभी सैनिक पहले कभी नहीं थे या आगे न होंगे। इसलिए दुःख-सुख सहन करने की हिम्मत रख और हम तुम ये सब सदा जन्म-मरण में ही हैं।*

❖ *विशेष विवेचन :- गीता अध्याय 2 के श्लोक 16 में वर्णन है कि असत् यानि नाशवान का आस्तित्व चिर काल तक नहीं रहता तथा सत् यानि अविनाशी का आस्तित्व सदा रहता है। अविनाशी परमात्मा है। उसका अंश आत्मा भी अविनाशी है। परमात्मा से संपूर्ण संसार व्याप्त है यानि विस्तार को प्राप्त हुआ है। उस अविनाशी परमात्मा का अभाव (अनुपस्थिति) किसी समय में नहीं होता है। गीता अध्याय 2 श्लोक 17 में उसी अविनाशी परमात्मा की महिमा बताई है कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी नित्य नहीं है क्योंकि आत्मा की उत्पत्ति परमात्मा ने अपने वचन से अपने शरीर से की है। उत्पत्ति से पहले आत्मा का अभाव था। भले ही वर्तमान में आत्मा भी अविनाशी है, परंतु परमात्मा का उस समय भी अभाव नहीं था।*

गीता अध्याय 2 श्लोक 17 के एस्कोन वाले श्री प्रभुपाद द्वारा किए अनुवाद में गड़बड़ी की है। आत्मा की महिमा बताई है जबकि मूल पाठ उस अविनाशी परमात्मा का गुणगान कर रहा है। (येन्) जिससे (सर्व इदम् ततम्) यह सम्पूर्ण जगत् यानि दश्य वर्ग व्याप्त है यानि विद्यमान है। एस्कोन वालों ने अनुवाद गलत किया है। शब्दों के अर्थ अनुवाद से पहले लिखे हैं जिनमें ''येन्''

शब्द का अर्थ तो ठीक किया ''जिससे'', परंतु अनुवाद में कर दिया ''जो''। उनके द्वारा किया अनुवाद इस प्रकार है :- जो सारे शरीर में व्याप्त है, उसे ही तुम अविनाशी समझो। उस अव्यय आत्मा को नष्ट करने में कोई भी समर्थ नहीं है। (अध्याय 2 श्लोक 17)

इसी गीता अध्याय 2 श्लोक 17 का अनुवाद गीता प्रेस गोरखपुर से मुद्रित व प्रकाशित तथा जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित में ठीक किया है जो इस प्रकार है :-

नाशरहित तो उसको जान (येन्) जिससे यह सम्पूर्ण जगत यानि दृश्य वर्ग व्याप्त है। उस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। (अध्याय 2 श्लोक 17)

दोनों अनुवाद ऊपर लिखे हैं, पाठकजन स्वयं निर्णय कर सकते हैं सत्य तथा असत्य का। वर्तमान में एस्कोन वालों की श्री प्रभुपाद जी द्वारा अनुवादित गीता का अधिक प्रचार हो रहा है जिसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा है ''श्रीमद्भगवत गीता यथारूप''। श्रद्धालुजन ''यथारूप'' शब्द देखकर आकर्षित होकर इस अनुवादित गीता को मोल लेते हैं जिसमें यथारूप के स्थान पर गलत अनुवाद अधिक है। अन्य उदाहरण :- गीता अध्याय 18 श्लोक 66 के अनुवाद में भी यही गलती कर रखी है। शब्दों के अर्थ में ''व्रज'' शब्द का अर्थ ''जाओ'' ठीक किया है, परंतु अनुवाद में ''आओ'' किया है जो स्पष्ट गलती है। आश्यर्च की बात तो यह है कि सन् 1983 से सन् 2012 तक 29 वर्षों में अड़तालीस (48) संस्करणों में कुल 6806000 (अड़सठ लाख छः हजार) गीता भारत में वितरित हो चुकी हैं जिनके प्रचार से गीता का बिगड़ा रूप पाठकों को पढ़ने को मिल रहा है। ''यथारूप'' की आड़ में गीता के ज्ञान को अज्ञान बनाकर जनता में फैलाया जा रहा है जो एक अपराध है, भोली जनता के साथ धोखा है। वैसे तो मेरे (रामपाल के) अतिरिक्त सर्व अनुवादकों ने गीता शास्त्र का अनुवाद व भावार्थ गलत किया है। परंतु एस्कोन वालों ने तो और अधिक बिगाड़ दिया है। पाठकजन गीता का यथारूप इस पुस्तक में पढ़ेंगे। गीता अध्याय 2 श्लोक 18-20 में जीवात्मा का वर्णन है। गीता अध्याय 2 श्लोक 16 में कहा कि सत् तथा असत् को तत्वदर्शी संत ही ठीक-ठीक बताते हैं। उन्होंने दोनों को देखा है यानि जाना है।

''अविनाशी प्रभु तो गीता ज्ञान दाता से अन्य है''

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 17 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता काल भगवान ने ऊपर के श्लोकों में कहा है कि अर्जुन! हम सब (मैं और तू तथा सर्व प्राणी) जन्म-मरण में हैं। श्लोक 17 में कहा है कि वास्तव में अविनाशी तो उसी परमेश्वर (पूर्ण ब्रह्म) को ही जान जिससे यह सर्व ब्रह्मण्ड व्याप्त (व्यवस्थित) हैं। उस अविनाशी (सतपुरुष) का कोई नाश नहीं कर सकता। उसी की शक्ति प्रत्येक जीव में और कण-2 में विद्यमान है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसका प्रकाश व उष्णता पृथ्वी पर प्रभाव बनाए हुए है। जैसे सौर ऊर्जा के संयन्त्र को शक्ति दूरस्थ सूर्य से प्राप्त होती है। उस संयन्त्र से जुड़े सर्व, पंखें, व प्रकाश करने वाले बल्ब आदि कार्य करते रहते हैं। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सत्यलोक में दूर विराजमान होकर सर्व प्राणियों के आत्मा रूपी संयन्त्र को शक्ति प्रदान कर रहा है। उसी की शक्ति से सर्व प्राणी व भूगोल गति कर रहे हैं। जिन शास्त्रविरूद्ध साधकों को परमात्मा का लाभ प्राप्त नहीं हो रहा उनके अन्तकरण पर पाप कर्मों के बादल छाए होते हैं। सतगुरू शरण में आने के पश्चात् सत्य साधना (शास्त्र विधि अनुसार) करने से वे पाप कर्मों के बादल समाप्त हो जाते हैं। जिस कारण से पूर्ण सन्त की शरण में रह कर मर्यादावत् साधना करने से परमात्मा से मिलने वाली शक्ति प्रारम्भ हो जाती है। कबीर परमेश्वर के शिष्य गरीबदास जी ने*

कहा है :-

जैसे सूरज के आगे बदरा ऐसे कर्म छया रे। प्रेम की पवन करे चित मन्जन झल्के तेज नया रे।।

सरलार्थ :-- जैसे सूर्य के सामने बादल होते है ऐसे पाप कर्मों की छाया जीव व परमात्मा के मध्य हो जाती है। पूर्ण सन्त की शरण में शास्त्रविधि अनुसार साधना करने से, प्रभु की भक्ति रूपी मन्जन से प्रभु प्रेम रूपी हवा चलने से पाप कर्म रूपी बादल हट कर भक्त के चेहरे पर नई चमक दिखाई देती है। अर्थात् परमात्मा से मिलने वाला लाभ प्रारम्भ हो जाता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मों के अनुसार यन्त्र (मशीन) की तरह भ्रमण करवाता है तथा जैसे पानी के भरे मटकों में सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है, ऐसे परमात्मा जीव के हृदय में दिखाई देता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 46 में भी यही प्रमाण है। लिखा है कि जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने वास्तविक कर्मों द्वारा पूजा करके मानव (स्त्री-पुरूष) परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।(18/46)

अध्याय 2 के श्लोक 18-20 का अनुवाद है कि यह पंच भौतिक शरीर नाशवान है। अविनाशी परमात्मा नाश रहित, प्रमाण रहित अर्थात् सामान्य साधक नहीं समझ सकता, जीवात्मा के साथ नित्य रहने वाला कहा गया है। जैसे उपरोक्त उदाहरण में सूर्य, सौर ऊर्जा संयन्त्र से अभेद रहता है उसी की शक्ति से ऊर्जा ग्रहण हो रही है। जिसे वैज्ञानिक ही जानते हैं। साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता की ये सर्व पंखे आदि कैसे कार्य कर रहे हैं। [गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 21-22-23 में और गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 8 में] इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन! युद्ध कर।

अध्याय 13 के श्लोक 21 का अनुवाद : परमात्मा अपनी सर्वव्यापकता से प्रकति अर्थात् दुर्गा में भी विद्यमान है इसलिए प्रकति से उत्पन्न तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव को भी गति उसी से मिलती है जिस कारण जीवात्मा को कर्मानुसार भोग भोगवाने के कारण भोगता है और इन गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है। जैसे सौर ऊर्जा का प्रयोग कोई पशु काटने की मशीन चलाने में प्रयोग करता है कोई जूस (रस) निकालने की मशीन चलाने में प्रयोग करता है। यह सर्व कार्य सौर ऊर्जा से ही होता है। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति युक्त साधक उसका जैसा प्रयोग करता है व श्रेय परमात्मा के गुण अर्थात् शक्ति को ही जाता है।

अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद : इस देह में स्थित यह (परः पुरूषः) अन्य परमेश्वर यानि सतपुरुष वास्तव में परमात्मा ही है वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सन्मति देने वाला होनेसे अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होने से भर्ता, यज्ञों यानि धार्मिक अनुष्ठानों में भोग लगाने से भोक्ता ब्रह्म व परब्रह्म आदि का भी स्वामी होने से महेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है। अध्याय 13 के श्लोक 23 का अनुवाद : इस प्रकार सतपुरुष को, काल भगवानको और गुणोंके सहित मायाको जो तत्वसे जानता है वह सब प्रकारसे कर्तव्य कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। अध्याय 15 के श्लोक 8 का अनुवाद : हवा गन्धको ले जाती है क्योंकि गंध की वायु मालिक है, ऐसे परमात्मा भी सूक्ष्म शरीर युक्त जीवात्मा जिस पुराने शरीरको त्याग कर और जिस नए शरीरको प्राप्त होता है, ले जाता है।

भावार्थ :- परमात्मा की निराकार शक्ति आत्मा के साथ ऐसे जानों जैसे मोबाइल फोन रेंज से ही कार्य करता है। टॉवर एक स्थान पर होते हुए भी अपनी रेंज से अपने क्षेत्र वाले मोबाईल फोन

के साथ अभेद है। इसको वही समझ सकता है जिसके पास मोबाईल फोन है। इसी प्रकार परमात्मा अपने निज स्थान सत्यलोक में रहता है या जहाँ भी आता जाता है अपनी निराकार शक्ति की रेंज को उसी तरह प्रत्येक ब्रह्मण्ड के प्रत्येक प्राणी व स्थान अर्थात् जड़ व चेतन पर फैलाए रहता है, जैसे सूर्य दूर स्थान पर रहते हुए भी अपना प्रकाश व अदश्य उष्णता (गर्मी) को अपने पहुँच वाले क्षेत्र पर कण-कण में फैलाए रहता है। इसी प्रकार परमात्मा के शरीर से निकल रहा प्रकाश व अदश्य शक्ति सर्व जड़ व चेतन को व्यवस्थित किए हुए है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी को यन्त्र (मशीन) की तरह चलाता है। जैसे भिन्न-2 मटकों में सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है। ऐसे परमात्मा प्रत्येक प्राणी के ह्रदय में दिखाई देता है। परन्तु वास्तव में वह बहुत दूर स्थित होता है। इस प्रकार सर्व को व्यवस्थित किए है।

अध्याय 2 के श्लोक 19 से 21 तक का भाव है कि सर्वव्यापक पूर्ण परमात्मा आत्मा के साथ ऐसे रहता है जैसे वायु में कहीं-2 गन्ध होती है। वायु का और गंध का कभी न अलग होने वाला सम्बन्ध है। परंतु गंध का स्थानान्तरण होता है तब वायु साथ ही रहती है। इसी प्रकार वायु तो परमात्मा जानो और गंध को आत्मा समझो। जैसे सुगंध अच्छी आत्मा तथा दुर्गंध दुष्ट आत्मा जानो। फिर भी परमात्मा उन्हें कर्मों के अनुसार नए शरीरों में ले जाता है और फिर भी साथ होता है। जैसे सूर्य प्रत्येक प्राणी को अपने साथ ही नजर आता है। दूर रहते हुए भी सूर्य के निराकार प्रभाव उष्णता से प्रत्येक प्राणी प्रभावित रहता है। इसी प्रकार परमेश्वर सत्यलोक में विराजमान होकर सर्व प्राणियों को ऐसे व्यवस्थित रखता है। ठीक इसी प्रकार यह अध्याय 2 के श्लोक 17 से 21, 22-23 व 24-25 का भिन्न-2 भाव से अर्थ समझना है।

❖ *अध्याय 2 श्लोक 22-23 में जीवात्मा की स्थिति बताई है।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 22 का अनुवाद : जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है। वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।*

अध्याय 2 के श्लोक 23 का अनुवाद : इस जीवात्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सूखा सकती। ईश्वरीय गुणों (शक्ति) से युक्त होते हुए भी आत्मा का अस्तित्व भिन्न बहुत न्यून है।

❖ *24-25 में फिर उस सर्वव्यापक परमात्मा की महिमा कही है।*

विशेष विवेचन :- गीता अध्याय 2 श्लोक 24-25 के अनुवाद में एस्कोन वालों सहित अन्य सबने गलत अनुवाद किया है। इन दोनों श्लोकों में परमात्मा का वर्णन है। श्लोक 24 में ''सर्वगतः'' शब्द है जिसका अर्थ तो ''सर्वव्यापी'' सभी अनुवादकों ने ठीक किया है, परंतु आत्मा को सर्वव्यापी बताया है। इसी एक शब्द से भावार्थ बदल जाता है। आत्मा सर्वव्यापी नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापी है। अधिक स्पष्ट जानकारी गीता अध्याय 13 के श्लोक 22 में पढ़ने को मिलेगी। बुद्धिमान को संकेत ही बहुत होता है।

अध्याय 2 के श्लोक 24 का अनुवाद : यह अच्छेद्य है यह परमात्मा अदाह्य अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह परमात्मा नित्य सर्वव्यापी अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

अध्याय 2 के श्लोक 25 का अनुवाद : यह परमात्मा गुप्त है परन्तु तेजोमय सूक्ष्म शरीर सहित है यह अचिन्त्य है और यह विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस परमात्मा को जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है, जिससे आत्मा विनाश रहित है। इस प्रकार से जानकर तू शोक करने के योग्य नहीं है अर्थात तुझे शोक करना उचित नहीं है क्योंकि परमात्मा का साथ होने से आत्मा मरती नहीं है। गीता अध्याय 7 श्लोक 25 में गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म ने कहा है कि मैं

अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ। सब के सामने प्रकट नहीं होता मुझ अव्यक्त (छुपे हुए) को यह अज्ञानी प्राणी कष्ण रूप में व्यक्ति आया मानते हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि उस अव्यक्त से भी परे जो आदि अव्यक्त पूर्ण परमात्मा है वह सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

अध्याय 2 श्लोक 12 से 25 तक का भाव है कि अर्जुन सर्व प्राणी (मैं तथा तू) जन्म-मरण में हैं परंतु अविनाशी तो उसे जान जिससे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है इस अविनाशी (पूर्ण ब्रह्म) का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। वह परमात्मा इस जीवात्मा के साथ ऐसे रहता है जैसे वायु में गंध है। वायु गंध का मालिक है। अच्छी आत्मा (सुगंध) तथा दुष्ट आत्मा (दुर्गन्ध) होती है। परंतु शुद्ध वायु निर्लेप है और दोनों यानि परमात्मा तथा आत्मा व वायु तथा गंध का अभेद सम्बन्ध है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के गुणों वाली ही है। फिर भी कर्म-भोग भोगती है। जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्र त्याग कर नए वस्त्र पहन लेता है, इसी प्रकार जीवात्मा कर्मानुसार स्वर्ग-नरक, चौरासी लाख जूनियों में सुख व कष्ट पाती है परंतु परमात्मा को कष्ट नहीं है। जीवात्मा दुःखी व सुखी अवश्य होती है। यहाँ पर यह बात याद रखना जरूरी है कि गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 22-23 में तथा गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 8 में प्रमाण है कि पूर्ण परमात्मा का अंश जीवात्मा है। इसी के साथ सतपुरुष का अभेद सम्बन्ध है। जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार फल भोगती है। दुःख-सुख को महसूस करती है परंतु परमात्मा (सतपुरुष) इससे परे है, निर्लेप है। इसलिए प्रिय पाठको यह भेद समझना जरूरी है। अमर-अछेद्य तो जीवात्मा भी है परंतु कर्मों के वश है तथा परमात्मा लिप्त नहीं है तथा समर्थ है। यह गहरा भेद समझ कर गीता जी के निर्मल ज्ञान का पूर्ण लाभ उठा पाओगे।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 26 से 30 में कहा है कि जीव आत्मा शरीर न रहने पर भी नहीं मरती है। चूंकि परमात्मा इसके साथ अदश्य रूप से रहता है। जिस प्रकार पुराने कपड़े उतार कर नए पहन ले ऐसे ही यह शरीर समझ। जीव आत्मा को न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न जल में डूबोया जा सकता है, न वायु सुखा सकती है, यह अमर है। यह परमात्मा जो जीवात्मा के साथ उपद्रष्टा रूप में रहता है जो निर्विकार है। यदि जीवात्मा को नित्य मरने-जन्मने वाली भी मानें तो भी दुःखी नहीं होना चाहिए। चूंकि पुराने वस्त्र त्याग कर नए पहन लिए इसलिए शोक मत कर। जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा तथा जो मरेगा उसका जन्म अवश्य है। भगवान कह रहा है तू तथा मैं तथा ये सर्व प्राणी पहले भी थे तथा आगे भी होंगे। फिर क्यों चिंता करें?*

❖ *विशेष विवेचन व तर्क-वितर्क :- गीता अध्याय 13 श्लोक 22 को एस्कोन वालों ने श्लोक 23 बनाया है। इस श्लोक 22 (23) का अनुवाद एस्कोन वालों ने कुछ ठीक किया है जो इस प्रकार है :-*

शब्दार्थ :- (उपदष्टा) साक्षी, (अनुमन्ता) अनुमति देने वाला, (च) भी, (भर्ता) स्वामी, (भोक्ता) परम भोक्ता, (महेश्वरः) महा ईश्वर, (परम-आत्मा) परमात्मा, (इति) भी, (च) तथा, (अपि) निःसंदेह, (उक्तः) कहा गया है, (देहे) शरीर में, (अस्मिन्) अस, (पुरूषः) भोक्ता, (पराः) दिव्य।

अनुवाद :- तो भी इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है जो ईश्वर है, परम स्वामी है और साक्षी तथा अनुमति देने वाले के रूप में विद्यमान है और जो परमात्मा कहलाता है।

❖ *गीता प्रेस गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित, श्री जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित गीता पदच्छेद अन्वय साधारण भाषा टीका सहित में व अन्य सब अनुवादकों ने गलत अर्थ किया है जो इस प्रकार है :- इस देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में (परः) परमात्मा ही है। साक्षी होने से उपदष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता सबका धारण-पोषण करने वाला होने से*

भर्ता, जीव रूप से भोक्ता (महेश्वरः) ब्रह्मादि का भी स्वामी होने से महेश्वर और (परमात्मा) शुद्ध सच्चिदानंद घन होने से परमात्मा ऐसे कहा गया है।

तर्क :- इस अनुवाद में जीवात्मा को परमात्मा कहा है तथा ब्रह्मादि यानि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का भी स्वामी होने से महेश्वर कहा है जो अज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसका यथार्थ सारांश इसी पुस्तक में गीता अध्याय 13 के दिव्य सारांश में पढ़ें।

विशेष विवेचन :- गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हुए आगे फिर कहा कि :-

गीता अध्याय 2 श्लोक 26 :- यदि तू इस आत्मा को सदा मरने वाला व जन्म लेने वाला मानता है तो भी शोक करने योग्य नहीं है।

श्लोक 27 :- क्योंकि तेरी मान्यता के अनुसार जन्मे हुए की मत्यु और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इस बिना उपाय वाले विषय में तू शोक करने के योग्य नहीं है

श्लोक 28 :- ये सर्व प्राणी जन्म से पहले भी प्रकट थे, मरने के बाद भी प्रकट होंगे, बीच में भी हैं। ऐसे में भी क्या शोक करना?

श्लोक 29 :- इस श्लोक में कहा है कि कोई महापुरूष ही इस आत्मा के विज्ञान को जानने की कोशिश करता है।

श्लोक 30 :- हे भारतवंशी अर्जुन! यह आत्मा परमात्मा के सानिध्य में इस शरीर में है। इसलिए यह अवध्य यानि इसका वध नहीं किया जा सकता। इसलिए सर्व प्राणियों यानि सामने उपस्थित सैनिकों तथा कुल के व्यक्तियों, रिश्तेदारों के मरने पर तू शोक करने के योग्य नहीं है।

❖ *इन श्लोकों की काल ब्रह्म की प्रेरणा पर विचार करते हैं। युद्ध में अभिमन्यु की मौत के समय सर्व पाण्डव विलाप करने लगे। सुभद्रा रोई। श्री कष्ण भी महादुःखी हुए। द्रोणाचार्य तो विद्वान थे, गुरू थे। वे भी अपने पुत्र अश्वथामा के मरने का समाचार सुनकर कलेजा पकड़कर बैठ गए, युद्ध नहीं कर सके। फिर अर्जुन कौन-से खेत की मूली था जो स्वजनों की मौत पर दुःखी न हो। यह सब काल ब्रह्म की चाल थी। उकसाकर अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार किया। परंतु* "जाको लागे वो तन जाने।" *पढ़ें कथा :-*

।। नकली संत की कथा।।

हरियाणा प्रांत के जीन्द जिले में एक पिण्डारा नामक तीर्थ है। वहां पर दो आश्रम हैं। एक समय वहां पर कोई पांच दिवसीय वार्षिक सतसंग उत्सव मनाया जा रहा था। उसमें यह दास भी श्रोता रूप में उपस्थित था। वहां पर 10-12 प्रवक्ता एक लम्बी स्टेज पर बैठे तथा प्रवचन शुरु हुए। सभी ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए। एक महात्मा जिसकी जानकारी स्टेज सैक्रेटरी ने दी थी कि यह महापुरुष पहुँचे हुए विद्वान आत्मतत्व में प्रवेश हैं व गीता के मर्मज्ञ ज्ञाता हैं। उस महात्मा जी ने अपने वचन सुनाए। यह आत्मा अजर-अमर है। यह न मरती है और न जन्मती है और न ही सुख-दुःख का भोक्ता है। आत्मा को कोई कष्ट नहीं होता। यह अज्ञानी जन समूह अज्ञान वश दुःखी-सुखी होते हैं। जो भी कष्ट है वह शरीर को उसके कर्म का दण्ड होता है। मानो कोई हानि है तो तेरा क्या गया? इसलिए शोक क्या? तू क्या लेकर आया था जो तेरा नुकसान मानता है? लाभ होता है तो मेरा है ही नहीं। सुख-दुःख व लाभ-हानि को त्याग कर कर्म करो और कोई शारीरिक कष्ट है तो समझो शरीर ही दुःखी है। आपको क्या है? बस फिर आत्म तत्व में पहुँच गए। मुक्ति निश्चित है।

सर्व उपस्थित संगत उसकी विद्वता तथा ज्ञान के वचनों पर सबसे ज्यादा प्रभावित हो गई। उसने तीन दिन तक रात्रि व दिन के सतसंग ऐसे ही किये। उसने बताया कि मैंने देखा एक व्यक्ति रो रहा है। कारण पूछा तो बताया कि मेरे पैर में असहनीय पीड़ा हो रही है इसलिए रो रहा हूँ। वह संत कहता है कि मैंने उस मूर्ख को कहा- क्यों चिल्लाता है, अज्ञानी? यह कष्ट तो शरीर को है। तुझे क्या है? बस यह विचार कर। वह दुःखी व्यक्ति चुप हो गया। फिर नहीं रोया। दुःख का अंत हुआ। इसी प्रकार अज्ञान वश यह नादान प्राणी कष्ट पाता है। यही ज्ञान भगवान श्री कष्ण ने अर्जुन को श्री गीता जी के माध्यम से दिया है।

चौथे दिन रात्रि में भी उस महात्मा जी ने ऐसे ही ज्ञान योग से मुक्ति का मार्ग बताया। सतसंग रात्रि का था जो रात्रि के 1 बजे समाप्त हो गया। रात्रि के दो बजे उसी महात्मा के पेट में दर्द हो गया। बुरी तरह रोने लगा - मर गया-मर गया की आवाज सुन कर काफी भक्त वन्द वहां एकत्रित हुए। सलाह बनी की जल्दी ही जीन्द हॉस्पिटल में ले चलो। दर्द जान लेवा लग रहा है। दूसरे आश्रम से कार मंगवाई। तुरंत हॉस्पिटल में ले गए जो तीन कि.मी. पर ही था। सुबह 6 बजे वापिस आया। आराम हो गया। उसके पास अन्य महात्मा जो उनके सामने ज्ञान में फीके पड़ गए थे उस ज्ञानी पुरुष से कहने लगे संत जी आप कह रहे थे कि दुःख तो शरीर को होता है आत्मा को नहीं। फिर आप क्यों रो रहे थे? इस पर वह अज्ञानी महात्मा क्रोध वश बोला ''ज्यादा मत बोलो, अपना काम करो।''

यहां गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि :-

गरीब, बीजक की बांता करैं, बीजक नाहीं हाथ। पथ्वी डोबन उतरे, कह–कह मीठी बात।।
गरीब, बीजक की बातां कहै , बीजक नाहीं पास। औरों को प्रमोद ही, आपन चले निरास।।
कबीर, करनी तज कथनी कथें, अज्ञानी दिन रात। कुकर ज्यों भोंकत फिरें, सुनी सुनाई बात।।

वाणियों का भावार्थ :- तत्वज्ञानहीन व्यक्ति तो कहते हैं कि हम अध्यात्म ज्ञान के गूढ़ रहस्यों को जानते हैं, परंतु उनके पास बीजक यानि तत्वज्ञान नहीं है। वे जनता को अज्ञान भरी मीठी-मीठी बातें कहकर काल जाल में फाँस देते हैं। यह सब अज्ञानी वक्ता पथ्वी को डुबोने यानि मानव का नाश करने के लिए उत्पन्न होते हैं। ये अन्य को मार्गदर्शन करते हैं, प्रवचन करते हैं, परंतु स्वयं भी भक्तिहीन होकर संसार से जाऐंगे। इनको भी निराशा ही हाथ लगेगी। वे सत्य भक्ति नहीं करते। केवल झूठा ज्ञान तथा सुना-सुनाया ज्ञान अन्य को प्रवचन करके बताते फिरते हैं। स्वयं अमल नहीं करते। ये कुत्तों की तरह केवल भौंकते फिरते हैं। जिस ज्ञान का कोई आधार नहीं है।

केवल कहने मात्र से बात नहीं बनती। परमात्मा प्राप्ति तथा मुक्ति पाने के लिए शास्त्रानुकूल साधना करनी होती है। जिस कारण से प्रारब्धवश जीवन में आने वाला संकट टल जाता है। तब बात बनेगी, केवल ज्ञान कथने से नहीं।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 31 से 37 में कहा है कि क्षत्री का धर्म नहीं है कि युद्ध में कायरता दिखाए और फिर युद्ध में मर भी गया तो स्वर्ग का दरवाजा खुला है। जीत गया तो राज्य का सुख भोगेगा। ऐसा अवसर बड़े भाग्य से मिलता है। अर्जुन! तेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। क्षत्री की अपकीर्ति मरने से भी दुस्तर होती है। इसलिए अर्जुन मान जा मेरी बात, युद्ध करले। अध्याय 2 के श्लोक 38 में कहा है कि हार-जीत, दुःख-सुख, लाभ-हानि को समान समझ कर युद्ध कर तुझे पाप नहीं लगेंगे।*

❖ *कपया पाठक विचार करें- बिना लाभ-हानि के युद्ध हो सकता है? क्या आवश्यकता पड़ी*

छाती में तीर खाने की? फिर स्वयं काल भगवान लाभ-हानि का लालच भी लगा रहे हैं (अध्याय 2 के श्लोक 37 में कहा है कि या तो तू युद्ध में मारा जा कर स्वर्ग प्राप्त करेगा या जीत कर पथ्वी का राज करेगा। गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 32 में कहा है कि अपने आप खुले हुए स्वर्ग के द्वार को भाग्यशाली क्षत्री ही प्राप्त करते हैं कि युद्ध में मर कर स्वर्ग प्राप्ति तो निश्चित है।) श्लोक 38 में लाभ-हानि को त्यागने को कहा है। काल ब्रह्म ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने यानि महाभारत का युद्ध करवाने के लिए पूरा जोर लगाया। झूठ-सच का भी सहारा लिया।

विचारणीय विषय यह है कि यदि श्री कष्ण जी यह ज्ञान कहते तो कालयवन के साथ युद्ध छोड़कर नहीं भागते क्योंकि वे भी क्षत्री थे। अपने क्षत्रिय धर्म को त्यागकर करोड़ों व्यक्तियों की जान बचा दी। कालयवन को मुचकन्द से मरवाकर जनहानि नहीं होने दी। यदि वे विचार करते कि मैं क्षत्री हूँ। आत्मा अमर है। ये सब मरेंगे तो फिर जन्म ले लेंगे, क्या हानि है तो सर्वनाश हो जाता। यह काल की चाल है जो युद्ध करवाना चाहता था। अध्याय 2 के श्लोक 45 का अनुवाद - हे अर्जुन! तीनों गुणों (रजगुण - ब्रह्मा, सतगुण - विष्णु, तमगुण - शिव) के द्वारा दिए जाने वाले लाभ के ज्ञान से तीनों गुणों से ऊपर उठकर हर्ष शोक आदि द्वन्द्वों से रहित स्थाई वस्तु पूर्ण परमात्मा में स्थित योग क्षेम को न चाहने वाला आत्म तत्व को जानने वाला हो।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 39 से 45 तक का अर्थ है समबुद्धि होकर कर्मबन्धन से मुक्त हो जा, ऐसे डगमग बुद्धि वाले कामयाब नहीं होते, राग-द्वेष मत रख तथा तीनों गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण की भक्ति) से भी रहित हो जा। योग क्षेम से भी रहित हो जा तथा पूर्ण परमात्मा के परायण (आश्रित) हो जा। नोट :- कप्या गुणों को समझने के लिए पढ़ें इसी पुस्तक के पष्ठ 309 पर।*

जो व्यक्ति वेदों यानि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद (वेदवाद रताः) की वाणी यानि मंत्रों पर वाद-विवाद करते रहते हैं। उनको वेदों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। वे संसारिक वस्तुओं की कामना करते रहते हैं। उनकी बुद्धि स्वर्ग से ऊपर कुछ नहीं मानती। वे जन्म-मरण के चक्र में रहते हैं। उनका चित तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) से मिलने वाले लाभ की वाणी यानि अज्ञान से हर लिया गया है। ऐसे व्यक्तियों की साधना में निश्चयात्मिक बुद्धि नहीं होती।

''पूर्ण परमात्मा की साधना करने तथा समर्थता का सटीक वर्णन''

अध्याय 2 के श्लोक 46 का अनुवाद - जिस प्रकार सब ओर से (पूर्ण रूप से) परिपूर्ण (बहुत बड़े पानी से भरे) जलाशय (तालाब) को प्राप्त हो जाने पर छोटे से तलईया (जलाशय) के प्रति जो आस्था रह जाती है इसी प्रकार तत्व ज्ञान को प्राप्त तत्वदर्शी सन्त की आस्था अन्य ज्ञानों में रह जाती है। तत्वज्ञान के आधार से तत्वदष्टा सन्त को पूर्ण परमात्मा की जानकारी हो जाती है। जिस कारण से उसकी अन्य प्रभुओं (ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा क्षर ब्रह्म - परब्रह्म व देवी-देवताओं) में आस्था कम रह जाती है अर्थात् वह विद्वान पूर्ण परमात्मा के आश्रित हो जाता है। तीन लोक की साधना त्याग कर सतलोक की साधना करता है। पूर्व समय में सिंचाई तथा पीने के पानी का स्रोत जलाशय ही होता था। जो परिवार किसी छोटे तालाब पर निर्वाह कर रहा हो जिसका जल ग्रीष्म ऋतु में सूख जाता हो, वर्षा होने पर जल से भरता हो। यदि वर्षा न हो तो जल के अभाव से संकट निश्चित होता है। उस परिवार को बहुत बड़ा जलाशय (झील) प्राप्त हो जाए जिसका जल दस वर्ष वर्षा न होने पर भी समाप्त न हो। फिर उस परिवार की आस्था पहले वाले छोटे जलाशय में जैसी

रह जाती है, वह छोटा जलाशय बुरा नहीं लगता परंतु उसकी क्षमता का ज्ञान है कि यह तो अस्थाई लाभ है तथा बड़ा जलाशय (झील) स्थाई लाभदायक है। वह परिवार तुरंत बड़े जलाशय के निकट अपना डेरा डाल लेता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सतपुरुष (कविर्देव) के लाभ को दिलाने वाला तत्वदर्शी संत मिलने के पश्चात् साधक की आस्था अन्य प्रभुओं में जैसे उपरोक्त छोटे जलाशय में रह जाती है, ऐसे रह जाती है। अन्य प्रभु बुरे भी नहीं लगते, परंतु उनकी क्षमता (शक्ति) का ज्ञान हो जाने से पूर्ण परमात्मा में स्वतः श्रद्धा अधिक बन जाती है। फिर साधक पूर्ण परमात्मा से ही लाभ प्राप्ति का प्रयत्न करता है, अन्य प्रभुओं की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता। इसीलिए गीता ज्ञान दाता प्रभु ने श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्व भाव से उस परमात्मा की शरण में जा जिस की कृपा से तू परम शान्ति तथा शाश्वत् स्थान अर्थात् सत्यलोक (अविनाशी लोक) को प्राप्त होगा।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 47 में कहा है कि कर्म कर फल की इच्छा मत कर।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 48 से 50 तक का भाव है कि शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म एक प्रभु का ही करना श्रेयकर है। आपको सिद्धि प्राप्त हो या न हो, इस बात को भूल जा, प्रभु जो करता है वह अच्छा ही होता है, यह ध्यान में रखकर साधना करता रह। पहले वाले सर्व शास्त्रविरूद्ध भक्ति कर्म त्याग दे, चाहे वे तुझे अच्छे भी लगते हैं तथा अन्य दुषित कर्म जैसे मास- मदिरा, तम्बाखु, चोरी-ठगी, व्याभीचार आदि भी त्याग कर तत्वदर्शी संत द्वारा बताए भक्ति मार्ग के प्रत्येक नियम का पालन करते हुए साधना करना ही बुद्धिमता है। सुकृत अर्थात् अच्छे कर्म जो चाहे साधक के दृष्टिकोण से अच्छे भी लगते हों उन्हें गुरु आदेश से त्याग देने से ही लाभ है (जैसे किसी को बुलाकर पाठ आदि करवाना, भिखारी को पैसे देना, वह भिखारी उन पैसों की शराब सेवन कर लेता है तो आपको ही दोष लगेगा।) एक भिखारी को एक धार्मिक व्यक्ति ने सौ रूपये अच्छे कर्म (पुण्य) जान कर दे दिए। पहले वह पाव (बोतल का चौथा भाग) शराब पीता था। उस दिन आधी बोतल उस भिखारी ने मदिरा सेवन किया तथा अपनी पत्नी को पीट डाला। उसकी पत्नी बच्चों सहित कुएँ में गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुई। ऐसा अपनी सूझ-बूझ का अच्छा कर्म अर्थात् पुण्य भी नहीं करना चाहिए। केवल गुरुदेव के आदेश का पालन करना ही सत्य भक्ति में हितकर है।*

अनामी (अनामय) लोक का प्रमाण अध्याय 2 के श्लोक 51 में।

अध्याय 2 के श्लोक 51 में स्पष्ट है कि जो भजन अभ्यास शास्त्रानुकूल अर्थात् मतानुसार (मतपरायण होकर) मेरे बताए अनुसार करता है वह सतलोक में जाकर फिर वहाँ से आगे अनामी (अनायम् पदम् गच्छन्ति) लोक को चला जाता है अर्थात् अनामी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जन्म-मरण का रोग समाप्त हो जाता है। अनामी पुरुष का प्रमाण कृप्या देखें इसी पुस्तक के पृष्ठ नं. 66 पर शब्द 'कर नैनों दीदार महल में प्यारा है' की 29 नं. कड़ी -

तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई। जो पहुँचेंगे जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है।।29।।

जैसे साधक चार पदों (मुक्ति स्थानों) की प्राप्ति कर सकता है।

1. देवी-देवताओं, पितरों, भूतों की साधना से इन्हीं को प्राप्त होता है। परंतु यह सबसे घटिया साधना पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति है। अध्याय 9 के श्लोक 25 के अनुसार। अध्याय 9 के श्लोक 25 का अनुवाद : देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मतानुसार अर्थात् शास्त्र अनुसार पूजन करने वाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

2. दूसरी गति या पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा है। यह पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति पूर्ण नहीं है अर्थात् घटिया है। अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20-23 तथा अध्याय 14 के श्लोक 5 से 9 तक।

कप्या तीनों गुण क्या हैं? पढ़ें इसी पुस्तक के पष्ठ 309 पर।

अध्याय 14 के श्लोक 5 का अनुवाद : हे अर्जुन! सत्वगुण, रजोगुण, तमगुण ये प्रकति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 6 का अनुवाद : हे निष्पाप! उन तीनों गुणों में सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और नकली अनामी है। वह सुख के सम्बन्ध से और ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 7 का अनुवाद : हे अर्जुन! रागरूप रजोगुणको कामना और आसक्तिसे उत्पन्न जान वह इस जीवात्माको कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्ध से बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 8 का अनुवाद : हे अर्जुन! सब शरीरधारियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निंद्रा के द्वारा बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 9 का अनुवाद : हे अर्जुन! सतगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढककर प्रमाद में भी लगाता है।

3. तीसरी गति अर्थात् पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति ब्रह्म साधना है जो वेदों व गीता जी के अनुसार करनी चाहिए। सर्व देवी-देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अर्थात् तीनों गुणों की साधना त्याग कर एक ऊँ (ओंकार) नाम का जाप गुरु धारण करके करते हुए ब्रह्म लोक (महास्वर्ग) में साधक चला जाता है जो हजारों युगों तक वहाँ ब्रह्म लोक में आनन्द मनाता है। फिर पुण्यों के समाप्त होने पर मतलोक में चौरासी लाख जूनियों में चक्र लगाता रहता है। यह भी गति-पद (मुक्ति) अच्छी नहीं है। इससे भी जीव पूर्ण रूप से सुखी नहीं। पूर्ण शांति को प्राप्त नहीं अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं है। परंतु इस ब्रह्म (काल) साधना से प्राणी अन्य पूजाओं से सौ गुणा सुखी है परंतु फिर भी काल (ब्रह्म-क्षर पुरुष) के जाल से मुक्त नहीं है। यह मुक्ति अच्छी नहीं अपितु व्यर्थ है। गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में स्वयं काल कह रहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्मा हैं तो उदार, परंतु ये भी मेरी (अनुत्तमाम्) अति घटिया (गतिम्) मुक्ति में ही आश्रित हुए प्रसन्न हैं।

4. चौथी गति यानि मुक्ति स्थान :- (गति-पद) है परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की भक्ति से चौथी गति (पद यानि मुक्ति स्थान) को प्राप्त होता है। लेकिन परब्रह्म की साधना का ज्ञान वेदों व गीता जी में नहीं है। इनमें केवल ब्रह्म (क्षर पुरुष) तक की भक्ति तथा इसी की प्राप्ति का ज्ञान है। जैसे ऊँ मन्त्र का जाप केवल ब्रह्म साधना है। इसलिए जो साधक परब्रह्म की भक्ति निर्गुण मान कर करते हैं वे भी काल के जाल में ब्रह्म लोक में ही चले जाते हैं। क्योंकि निर्गुण उपासक ऋषि जन मान लेते हैं कि हम परब्रह्म साधना कर रहे हैं, परंतु काल (ब्रह्म) तक का ही लाभ प्राप्त करते हैं। काल प्रभु ने महास्वर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों की व्यवस्था कर रखी है। ब्रह्मलोक की प्राप्ति तीन लोक में सबसे उत्तम मानते हैं।

5. पाँचवीं गति यानि मुक्ति स्थान :- पूर्ण परमात्मा का ज्ञान होने पर उसी परमात्मा प्राप्ति की साधना करते हैं। इसी प्रकार यह आत्मा तत्वदर्शी संत से उपदेश मंत्र प्राप्त करके सत्य भक्ति की कमाई करके उसके आधार से सतलोक चली जाती है। यह वह स्थान है जहाँ प्राणी मानव रूप

में आकार में रहता है। तेज पुंज का शरीर हो जाता है। इतना नूरी शरीर बन जाता है मानो 16 सूर्यों जितनी रोशनी हो। यहाँ पर गए प्राणी (आत्मा) कभी नहीं मरते। सतलोक में हंस पुरूष को तथा हंसनी स्त्री को कहते हैं।

सतलोक वह स्थान है जिसमें हंस आत्मा आकार में मौज करती है। सतलोक से आगे अलख लोक है, अलख लोक में अलख पुरुष का राज्य है, अलख लोक से आगे अगम लोक है, अगम लोक में अगम पुरुष का राज्य है। अगम लोक से आगे अकह लोक अर्थात् अनामी लोक है। इसमें अनामी परमात्मा (पुरुष) का राज्य है। ऊपर के तीनों लोकों में एक ही परमात्मा (पूर्णब्रह्म कविर्देव) है वह तीन स्थितियों में रहता है। जैसे भारत के प्रधान मंत्री जी के शरीर का नाम कुछ और होता है, परंतु प्रधान मंत्री उनका पद का उपमात्मक नाम होता है। कई बार प्रधान मंत्री जी अपने पास अन्य विभाग रख लेता है। जैसे गृह विभाग अपने पास रख लिया। जब गृह मंत्रालय के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करता है तो अपने को गृह मंत्री लिखता है, उस समय उनकी शक्ति प्रधान मंत्री वाले हस्ताक्षरों से कहीं कम होती है। ठीक इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म सतपुरुष का वास्तविक नाम कविर्देव भाषा भिन्न होने से कबीर,कबीरन्, खबीरा, हक्का कबीर, सत कबीर वास्तविक नाम है तथा उपमात्मक नाम से वह परमात्मा अलख लोक में अलख पुरुष बन कर, अगम लोक में अगम पुरुष बन कर, अकह लोक में अनामी (अनामय) बन कर रहता है जो आत्मा सतलोक में जा कर अनामी पुरुष की साधना करती है वह आत्मा भक्ति के कारण उस परमात्मा (अनामी-अनामय) की परम गति को प्राप्त हो कर भगवान में लीन हो जाती है। अध्याय 2 के श्लोक 51 में - 'अनामयम् पदम् गच्छन्ति' अर्थात् पूर्ण रूप से जन्म-मरण रूपी दीर्घ रोग से रहित हो कर अनामी (अनामय) पद यानि मुक्ति स्थान को प्राप्त हो जाता है इसको अनामय पद प्राप्ति कहा है। यहाँ प्रत्येक ब्रह्मण्ड में क्षर पुरुष (काल) ने सतलोक की नकल करके नकली (Duplicate) लोक बना रखे हैं। ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने प्रत्येक ब्रह्मण्ड में एक ब्रह्मलोक की रचना करवा रखी है। इसी ब्रह्मलोक में तीन गुप्त स्थानों की भी रचना करवा रखी है। एक सतोगुण प्रधान, दूसरा रजोगुण प्रधान, तीसरा तमोगुण प्रधान। इसी ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग की रचना करवा रखी है। उसी महास्वर्ग में नकली सतलोक, नकली अलख लोक, नकली अगम लोक व नकली अनामी लोक की रचना भी प्रकति दुर्गा से करवा रखी है। इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में भी नकली चारों लोकों की रचना करवा रखी है। यह प्राणियों को धोखे में रख कर वास्तविकता का पता नहीं लगने देता है। स्वयं कविर्देव (कबीर परमेश्वर) आकर अपनी सर्व जानकारी देते हैं।

प्रश्न :- मुक्तियों के विषय में तो शास्त्रों में लिखा है कि मुक्ति चार है।

(1) सालोक्य=ईश्वर के लोक में निवास करना (2) सारूप्य = जैसा उपासनीय देव की आकति वैसा बन जाना (3) सामिप्य=सेवक के समान उपासनीय देव के पास रहना (4) सायुज्य=उपास्य देव के साथ संयुक्त हो जाना। आप ने चार मुक्ति भिन्न बताई हैं तथा पाँचवी मुक्ति भी बताई है। जिस के विषय में कभी नहीं सुना व कहीं नहीं पढा।

उत्तर :- जो ये चार मुक्तियाँ बताई हैं, वे उपास्य देव की साधना से होती हैं। इसलिए बताई हैं। प्रत्येक प्रभु या देवताओं की साधना से ये चारों उपरोक्त (जो प्रश्न में बताई हैं) मुक्तियों में से एक साधक को प्राप्त होती है तथा पांचवी मुक्ति का ज्ञान स्वसम वेद में है।

-: शब्द :-

सतलोक में चल मेरी सुरतां, मत न लावै देरी। साच कहूँ न झूठ रति भर, तू बात मान ले मेरी।।टेक।।

प्रथम जाना सतसंग के में चर्चा सुनिए आत्म ज्ञान की, सुनकै सतसंग जागी नहीं तो पूछ श्वान की।
तीर्थ व्रत ये पित्र पूजा कोन्या किसे काम की, लै कै नाम गुरु से भक्ति करिए कबीर भगवान की।।
मत सुनना मन सैतान की, ये चौकस घालै घेरी।।1।।
काल लोक में कष्ट उठावै यह कोन्या तेरा ठिकाना, मात पिता संतान सम्पति का झूठा बुन रही ताना।
जाप अजपा मिल जावै जब सुमरण में मन लाना, सार शब्द तेरे काटे बंधन आकाशै उड जाना।।
त्रिकुटी में आना हे सुरतां, मतना भटकै बेरी।।2।।
त्रिकुटी में पहुँच कै सुरतां चारों ओर लखावै, शब्द गुरु फिर प्रकट होवे उसते ब्याह करवावै।
नूरी रूप गुरु का होकै तेरै आगे–आगे जावै, सतलोक में सेज बिछी तेरे चौकस लाड लडावै।।
जन्म मरन मिट जावै हे सुरतां, हो आनन्द काया तेरी।।3।।
सतलोक में जा कै हे सुरतां संकट कट जां सारे, अलख लोक और अगम लोक के दिखैं सभी नजारे।
लोक अनामी जावैगी वहां कोन्या मिलैं चौबारे, आत्मा और परमात्मा वहां भी रहते न्यारे–न्यारे।।
रामपाल प्रीतम प्यारे की आत्मा, अब पूर्ण आनन्द लेरी।।4।।

भावार्थ :- भक्त/भक्तमति को समझाने के लिए अपनी सुरति जो आत्मा की आँख है, दूसरे शब्दों में अप्रत्यक्ष रूप से आत्मा को सुरतां नाम से संबोधित करके पूर्णमोक्ष यानि पाँचवीं मुक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा लेखक ने की है और पाँचवीं मुक्ति कैसे मिलेगी, उसकी प्राप्ति में क्या बाधा आती है, सब बताया है। कहा है कि मेरी सुरति यानि ध्यान सतलोक वाले सुख को प्राप्त करने के लिए उस ओर चल यानि लगन लगा। भक्त/भक्तमति अपनी आस्था पूर्ण मोक्ष प्राप्ति के लिए दृढ़ कर। विलम्ब न कर। मैं सत्य कह रहा हूँ कि सत्यलोक में सर्व सुख हैं। इसी को गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में शाश्वतं स्थानम् यानि सनातन परम धाम कहा है। वहाँ परमशांति बताई है। जिज्ञासु को सर्वप्रथम संत का सत्संग सुनना चाहिए जो पूर्ण आत्मज्ञान करवाता है। बताता है कि आत्मा क्या है? मानव जीवन प्राप्त आत्मा का क्या लक्ष्य है? जीव को जन्म-मरण का चक्र किस कारण से है? इस कष्ट से कैसे छुटकारा मिल सकता है? यह आत्मज्ञान है। परमात्मा ज्ञान (परमात्म ज्ञान) वह है जिसमें परमेश्वर जी की महिमा, गुण तथा पहचान बताई जाती है। उसकी प्राप्ति का मार्ग शास्त्रोक्त बताया जाता है। यह सर्व ज्ञान पूर्ण संत ही बताता है। पूर्ण संत जो यह ज्ञान बताता है, वह सुदुर्लभ है। गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में यही बताया है कि जो संत यह ज्ञान करवाता है कि वासुदेव का अर्थ है कि जिसका वास सब स्थानों पर है यानि सर्व का स्वामी जो सर्व ब्रह्माण्डों में अपनी सत्ता जमाए है। वह ही सब कुछ है यानि वही विश्व का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता, मोक्षदाता है। वह संत बहुत दुर्लभ है। {सूक्ष्मवेद में कहा है कि ऐसे संत करोड़ों में नहीं मिलेगा, अरबों व्यक्तियों में एक मिलता है। वर्तमान में यानि सन् 2012 में मेरे (रामपाल दास के) अतिरिक्त सात अरब मनुष्यों में कोई भी वह संत नहीं है।} उस संत का सत्संग सुनो। यदि उसका सत्संग सुनकर भी भक्ति की प्रेरणा नहीं बनती है तो वह जीव कुत्ते की दुम के समान है जो बारह वर्ष तक बाँस की नली में डालकर रखने के पश्चात् भी सीधी नहीं होती। बाहर निकालते हैं तो उसी स्थिति में हो जाती है। वह संत शास्त्र प्रमाणित ज्ञान बताता है कि जो लोक वेद यानि दंत कथाओं के आधार से तीर्थ, भ्रमण, व्रत रखना, पितर पूजा यानि श्राद्ध कर्म करना आदि-आदि साधना का साधक को लाभ के स्थान पर हानि मिलती है, यह नहीं करनी चाहिए। गीता अध्याय 9 श्लोक 25 में भी यह बताया है कि भूत पूजने वाले भूत बनते हैं। पितर पूजने वाले पितर बनते हैं। इसलिए पितर पूजा (श्राद्ध करना), भूत पूजा (तेरहवीं, सतरहवीं, वर्षी आदि-आदि कर्मकाण्ड क्रियाऐं) नहीं करनी

चाहिऐं। ये सब अध्यात्म में बाधक हैं। पूर्ण संत यानि सतगुरू से दीक्षा लेकर कबीर परमेश्वर जी को ईष्ट मानकर साधना करने से पूर्ण मोक्ष होगा। सत्य मार्ग पर चलने के पश्चात् मन जो काल ब्रह्म का एजेंट है, यह भ्रमित करेगा। भय भी उत्पन्न करेगा कि वर्षों से करते आ रहे थे, उस साधना को त्यागने से हानि हो सकती है। अन्य गलतियाँ करने को प्रेरित करेगा जो भक्ति खंडित करती हैं। इसलिए मन शैतान की मिथ्या कल्पनाओं की ओर ध्यान नहीं देना है। गुरू जी के बताए मार्ग पर निर्भय होकर चलते रहना है।

काल के इक्कीस ब्रह्माण्डों में सर्व प्राणी जन्म-मरण तथा कर्मों का कष्ट झेल रहे हैं। यह जीव का वास्तविक निवास नहीं है। देवताओं तक की भी मत्यु होती है और जन्म होता है। नरक में भी गिरना होता है। अन्य प्राणियों के शरीरों में कर्मानुसार कष्ट भोगना पड़ता है। आज हम जिस परिवार व संपत्ति को अपना मानते हैं, यह अपना नहीं है। यह भारी धोखा काल ने किया है। अपनी मत्यु हो जाएगी। परिवार व संपत्ति व निवास छूट जाएगा। यह अपना निज ठिकाना नहीं है। केवल सतलोक (सनातन परम धाम) प्रत्येक जीव का ठिकाना है जहाँ कभी मत्यु-वद्धावस्था तथा कष्ट नहीं होता। उस सतलोक को प्राप्त करने के लिए प्रथम उपदेश जो सात नामों का है, उसका सुमरण उच्चारण करके या मानसिक करना होता है। दूसरा उपदेश श्वासों से करना होता है। इसलिए अजप्पा जाप (स्मरण) कहा जाता है। तीसरी बार में सारनाम प्रदान गुरू जी करते हैं। तीनों उपदेशों का स्मरण करना है। सारनाम से जन्म-मरण का कष्ट समाप्त होता है। मत्यु के पश्चात् मर्यादा में रहकर भक्ति करने वाली आत्मा कर्म बन्धन से मुक्त होकर आकाश में उड़ जाती है। जैसे तोते को पिंजरे से निकाल दिया जाता है तो वह तीव्र गति से आकाश में उड़ जाता है। वह सावधानी नहीं करेगा तो फिर से बंदी बन सकता है। इसीलिए कहा है कि हे आत्मा! आप यदि सावधानी नहीं करोगी तो फिर से बंधन में फँस जाओगी। इसलिए आन-उपासना न करना। फिर से अपनी परंपरागत साधना करने बेरी वाली माता पर न चली जाना। न पिण्ड-दान करने गंगासागर वाली बेरी पर भी न जाना। शरीर में बने कमलों का मार्ग प्रथम मंत्र खोल देता है। फिर दूसरे मंत्र यानि सतनाम की भक्ति की शक्ति (सिद्धि) के कारण जीव त्रिकुटी कमल में जाता है। वहाँ जाने को कहा है।

त्रिकुटी ऐसा स्थान है जैसे अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा होता है जहाँ से जिस देश में जाने की टिकट है, वहाँ से हवाई जहाज मिलता है। जिस साधक ने जिस भी ईष्ट की भक्ति की है, वह सर्वप्रथम त्रिकुटी स्थान पर जाता है। वहाँ से उसको गुरू के रूप में उसका ईष्ट देव मिलता है। अपने गुरू को पहचानकर साधक उसके साथ ईष्ट धाम में चला जाता है। जो परमेश्वर कबीर जी के भक्त होते हैं, उनके साथ काल ब्रह्म (ज्योति निरंजन) छल करता है। काल ब्रह्म कबीर भक्त के गुरू जी का रूप बना लेता है। जिनको विवेक नहीं होता, वे बिना परीक्षा किए उसके साथ चल पड़ता है जिसे नकली सतलोक में छोड़ा जाता है। वह काल का ब्रह्मलोक यानि महास्वर्ग है। जिस कारण से वह साधक काल जाल में ही रह जाता है।

❖ *परीक्षा कैसे करनी है? परिक्षा विधि :- भक्त को चाहिए कि गुरू जी के दर्शन करते वक्त सत्यनाम व सारनाम का स्मरण करे। यदि नकली गुरू यानि काल होगा तो उसका स्वांग समाप्त हो जाएगा यानि गुरू का रूप नहीं रहेगा। उसका असली स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाएगा। यदि असली गुरू जी होगा तो वास्तविक स्वरूप (चेहरा) बना रहेगा। त्रिकुटी स्थान पर जाकर चारों ओर दष्टि घुमाकर अपने गुरूदेव को खोजे। जब जीवात्मा को शब्द गुरू यानि दीक्षा देने वाला अविनाशी गुरू*

दिखाई दे तो उससे विवाह करावे यानि उसका पल्ला पकड़े। भावार्थ है कि जैसे लड़की का विवाह जिस लड़के से कर दिया जाता है तो वह उसकी पहचान कर लेती है। सबको त्यागकर उसके साथ चल पड़ती है। रास्ते में किसी अन्य से नाता नहीं जोड़ती। वह पति के घर चली जाती है। इसी प्रकार आत्मा अपने गुरू जी के साथ-साथ रहे, गुरू जी के रूप में परमेश्वर कबीर जी आगे-आगे चलेंगे। आत्मा दुल्हन की भांति पीछे-पीछे चले। वह आत्मा अपने पति परमेश्वर के घर यानि सतलोक में सर्व सुख प्राप्त करेगी। परमात्मा मोक्ष प्राप्त आत्मा को बहुत लाड़-प्यार देता है। प्रशंसा करता है। सतलोक में जाने के पश्चात् सर्व संकट समाप्त हो जाते हैं। सत्यलोक में जीव को हंस कहते हैं। हंसात्मा स्त्री-पुरूष रूप में रहते हैं। स्त्री को हंसनी तथा पुरूष को हंस कहते हैं। जैसे यहाँ भक्त तथा भगतनी या भक्तमति कहते हैं। सतलोक में हंसात्माओं को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। जिसके द्वारा ऊपर के दोनों लोक (अलख लोक और अगम लोक) देखे जा सकते हैं। परंतु अकह लोक यानि अनामी लोक को तो वहीं जाकर देखा जाता है। वहाँ पर भी परमात्मा तथा आत्मा भिन्न-भिन्न निवास करते हैं। सत्यलोक में हंसात्मा अपने पति परमेश्वर यानि परमहंस के लोक में सर्व सुख प्राप्त कर रही होती है। अनामी लोक में कोई मकान नहीं है। अन्य तीनों लोकों में सुंदर महल प्रत्येक परिवार को प्राप्त हैं।

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 46-53 का अनुवाद :-*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 46 का अनुवाद :- सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे तालाब में मनुष्य का जितना प्रयोजन रह जाता है, विद्वान पुरूष का उतना ही प्रयोजन तत्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् अन्य (सर्वेषु वेदेषु) सब ज्ञानों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।(2/46)*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 47 :- तेरा कर्म करना अधिकार है, फल की इच्छा मत कर। इसलिए कर्तव्य कर्म बिना आसक्ति के कर।(2/47)*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 48 :- हे धनंजय! तू आसक्ति को त्यागकर सिद्धि यानि जय तथा असिद्धि यानि पराजय में समबुद्धि होकर योग यानि सत्य साधना में लगा हुआ भक्ति कर्म कर। यही (समत्वम् योगः उच्यते) निःइच्छा साधना कहते हैं।*

समत्व का भावार्थ है परमात्मा की इच्छा पर आश्रित रहकर फल की इच्छा न करे।(2/48)

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 49 :- तत्वज्ञान से प्राप्त बुद्धि से समझ ले कि इच्छा रखकर किए गए भक्ति कर्म अत्यंत निम्न श्रेणी के हैं। हे धनंजय! इसलिए बुद्धिमता से काम ले। तत्वदर्शी संत की शरण में जाने का मार्ग खोज क्योंकि फल की इच्छा रखने वाला तो कपण यानि कंजूस जैसा है जो धन का यथार्थ प्रयोग न करके धन जोड़कर छोड़कर चला जाता है जो उसके कुछ काम नहीं आता।(2/49)*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 50 :- तत्वज्ञान प्राप्त साधक पाप तथा पुण्य की कामना न करके केवल मोक्ष उद्देश्य से भक्ति करता है तथा पाप-पुण्य को यहीं त्याग देता है। इसलिए तू भी ऐसी साधना को अपना। भक्ति करने में ही कुशलता है, यही समझदारी है।(2/50)*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 51 :- (हि) क्योंकि (बुद्धियुक्ता) तत्वज्ञान प्राप्त (मनीषिणः) ज्ञानी महात्मा (कर्मजम्) कर्मों से उत्पन्न (फलम्) फल को (त्यक्त्वा) त्यागकर (जन्म बन्ध विनिर्मुक्ता) जन्म व मत्यु रूप बंधन से पूर्ण रूप मुक्त होकर (अनामयम्) जन्म-मरण के रोग रहित अनामी (पदम्) परम पद को (गच्छन्ति) प्राप्त हो जाते हैं यानि उस सनातन परम धाम में चले जाते हैं जहाँ पर परम शांति है तथा उस स्थान पर गए साधक फिर लौटकर संसार में नहीं आते।(2/51)*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 52 :- काल ब्रह्म ने कहा है कि (यदा) जब (ते बुद्धि) तेरी बुद्धि (मोहमलिलम्) मोह रूप दलदल से (व्यतितरिष्यति) भली-भांति पार कर जाएगी। (तदा) तब तेरे सामने एक समस्या आएगी कि यथार्थ अध्यात्म ज्ञान न मिलने के कारण (श्रुतस्य) सुने हुए (च) और (श्रोतव्यस्य) सुनने में आने वाले यानि सुने-सुनाए शास्त्रविरूद्ध (निर्वेदम्) अज्ञान को प्राप्त हो जाएगा। वेद का अर्थ है ज्ञान और निर्वेद यानि जो यथार्थ ज्ञान नहीं यानि अज्ञान। भावार्थ है कि लोकवेद से यह तो प्रेरणा मिल जाती है कि यह संसार स्वार्थी है। कोई सदा नहीं रहेगा। मानव शरीर केवल परमात्मा की भक्ति करके अपना जीव का कल्याण करवाने हेतु प्राप्त है। जो भक्ति नहीं करता, उसका मानव जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार के ज्ञान से पूर्व संस्कारी जीव का मोह तो संसार से हट जाता है, परंतु यथार्थ भक्ति ज्ञान यानि तत्वज्ञान के अभाव से साधक अज्ञानी संतों के सुने-सुनाए ज्ञान के कारण अज्ञान को ज्ञान मानकर ग्रहण कर लेता है।(2/52)*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 53 :- तत्वज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भाँति-भाँति के वचनों यानि अज्ञान से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा के ध्यान में पूर्ण रूप से निश्चल रूप से स्थाई स्थिर हो जाएगी, तब तू (योगम्) योग को यानि यथार्थ भक्ति को (अवाप्स्यसि) प्राप्त हो जाएगा यानि तब तू भक्त बनेगा।(2/53)*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 46 से 53 का सारांश :- इन श्लोकों का भावार्थ है कि वास्तव में पाप-पुण्य को भूल कर अर्थात् पाप-पुण्य का फल इसी लोक में त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना में लग जा। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में काल ब्रह्म ने कहा है कि मेरे स्तर की मेरी सर्व धार्मिक पूजा को मेरे में त्याग कर उस एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण में जा फिर मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। यही भाव यहाँ पर है। कहा है कि कर्मों में योग (भक्ति) करना कुशलता है। इसलिए योग (पूर्ण परमात्मा की भक्ति) में लगजा। समझदार साधक कर्मों से होने वाले फल को भी त्याग कर जन्म-मरण रूपी कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। हे अर्जुन! जब तू मोह रहित हो जाएगा, उसी वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा। जब तेरी बुद्धि नाना प्रकार के मत भेदी शास्त्रों के ज्ञान से विचलित न रह कर एक तत्वज्ञान पर आधारित हो जाएगी, फिर तू योगी (भक्त) बनेगा जैसे छोटे तालाब (तलईया) के प्रति मनुष्य का मन अपने आप हट जाता है जब उसे बड़े तालाब (जलाशय) की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हो जाने के बाद छोटे भगवानों ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी-देवताओं, माता तथा काल (ब्रह्म) तथा परब्रह्म आदि से मन हट कर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके उसके अनामी (अनामय) परम पद को अर्थात् सतलोक से भी आगे अनामी लोक में चला जाता है। जन्म-मरण से पूर्ण रूप से छूट जाता है। इसलिए तू पूर्ण परमात्मा का भक्त (योगी) हो जा। तब तू योगी अर्थात् सही भक्त होगा।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 54 में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि पूर्ण रूप से एक पूर्ण परमात्मा में आश्रित अर्थात् पूर्ण परमात्मा में स्थिर बुद्धि रखने वाले भक्त के क्या लक्षण होते हैं? उसका बोलना-चलना बैठना आदि कैसा होता है?*

गरीबदास जी महाराज ने इसका उत्तर भी यही बताया है कि :-

गरीब, राजिक रमता राम की, रजा धरै जो शीश। दास गरीब दर्श पर्श, तिस भेंटै जगदीश।।

भावार्थ :- 1. वह भक्त परमात्मा पर पूर्ण विश्वास करता है कि भक्त के लिए परमात्मा जो करता है, वह सही करता है। उसकी रजा में प्रसन्न रहता है। ऐसे साधक को परमात्मा मिलता है।

2. साधक सामाजिक कुरीतियों से बचता है। 3. नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करता। 4.

माँस नहीं खाता। 5. कोई बुराई जैसे व्याभीचार, चोरी-रिश्वतखोरी, डाके आदि नहीं करता।

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 55-68 का अनुवाद :-*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 55 :- अर्जुन ने श्लोक 54 में प्रश्न किया है कि जो साधक परमात्मा पर पूर्ण रूप से समर्पित हो चुका है, उसका ध्यान केवल परमात्मा प्राप्ति पर स्थाई रूप से स्थिर है, उसकी पहचान (लक्षण) क्या है? उसका कैसे पता चलता है? इसका उत्तर इस प्रकार दिया है कि हे अर्जुन! जब साधक मन की उपज कामनाओं को भली-भांति त्याग देता है, स्वयं संतुष्ट रहता है, तब वह स्थित प्रज्ञ यानि निश्चल बुद्धि कहा जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 56 :- इसके अतिरिक्त सुख-दुःख में विचलित नहीं है, जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं। वह मुनि यानि भक्त स्थिर बुद्धि कहा जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 57-58 :- इन श्लोकों में भी स्थिर बुद्धि वाले साधक के लक्षण बताए हैं। कहा है कि शुभ-अशुभ परमात्मा की देन मानकर विचलित नहीं होता। भौतिक जगत से प्रेम न रखकर परमात्मा में रूचि रहता है। राग-द्वेष रहित होता है। जैसे कछुआ अपने सर्व अंगों को समेटकर छुपा लेता है, उसी प्रकार भक्त अपनी इन्द्रियों को शांत कर लेता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 59-60 :- इन श्लोकों में कहा है कि जो व्यक्ति हठपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से दूर रखता है। उसकी स्थिति ऐसी होती है जैसे कोई व्यक्ति निराहार यानि भोजन के बिना रहता है। उसने पदार्थों के खाने से संयम कर लिया, परंतु उन पदार्थों के स्वाद में आसक्ति बनी रहती है। इसी प्रकार इन्द्रियों को हठपूर्वक विषयों से रोकने से संयम तो कर लिया, आसक्ति समाप्त नहीं हुई। साधक की विषयों का रस यानि आनंद लेने वाली आसक्ति काल ब्रह्म से (परम्) पर यानि अन्य परमात्मा को (दृष्टवा) देखकर यानि सत्य साधना से परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है जिससे वह आसक्ति (निवर्तते) निवत हो जाती है।*

❖ *हे अर्जुन! जिनको तत्वज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, उन्होंने यदि हठ करके इन्द्रियों की विषयों भोगों से रोक भी ली तो भी इन्द्रियाँ बुद्धिमान पुरूष के मन को हर लेती हैं। उदाहरण :- श्रंगी ऋषि ने अपनी इन्द्रियों को हठयोग से रोका था। उसके लिए वर्षों हठ करके निराहार रहा। एकांतवास वन में किया। परंतु पूर्ण परमात्मा के सत्य मंत्रों की साधना के अभाव के कारण राजा दशरथ की बेटी शांता के रूप पर आसक्त होकर सर्व रसों के भोग का आनंद लिया, विवाह किया। इन श्लोकों में यही बताया है कि गीता ज्ञान दाता यानि काल ब्रह्म तक की साधना से साधक के विकार समाप्त नहीं होते। कुछ दिन दबे रहते हैं। अवसर मिलते ही पहले से भी प्रबल वेग से सक्रिय हो जाते हैं। जैसे अग्नि को राख में दबा दिया जाता है। ऊपर हाथ रखकर जाँच करने से भी गर्म नहीं लगती। परंतु कुछ समय उपरांत भी राख ऊपर से हटाने के पश्चात् पहले से अधिक गर्म होती है। यही दशा काल ब्रह्म से अन्य परमात्मा की साधना न करने वालों की है। अगले श्लोक 61 में स्पष्ट किया है :-*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 61 :- सब इन्द्रियों को वश में करके (मत्परः) मेरे से दूसरे परमात्मा (आसीत युक्तः) की साधना में साधक लगे क्योंकि उसी की सत्य मंत्रों की साधना से मन वश होता है। मन के आधीन इन्द्रियाँ हैं। जिस साधक की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती हैं।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 62-63 :- इन श्लोकों में बताया है कि विषयों यानि विकारों का चिंतन करने वाले व्यक्ति की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से उनको प्राप्त करने*

की कामना उत्पन्न होती है। कामना पूर्ण न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूर्खता उत्पन्न होती है। मूढ़भाव से स्मरण शक्ति में भ्रम हो जाता है। स्मति में भ्रम हो जाने से बुद्धि यानि विवेक का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने से व्यक्ति मानवता से गिर जाता है।

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 64-65 :- इन श्लोकों में कहा है = परंतु (विधेय आत्मा = विधेयात्मा) शास्त्रविधि अनुसार पूर्ण परमात्मा की साधना करने वाला साधक सत्य साधना से अपने वश में की हुई राग-द्वेष रहित की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ यानि संसार में रहकर कर्म करता हुआ परिवार पोषण करता हुआ भी (प्रसादम्) परमात्मा प्राप्ति रूपी कपा प्रसाद को यानि पूर्ण सुखदायी मोक्ष को (अधिगच्छति) प्राप्त हो जाता है।*

❖ *(प्रसादे) परमात्मा की कपा से परमात्मा की प्राप्ति होने पर इस साधक (सर्वदुःखानाम्) सब दुःखों की हानि हो जाती है। वह सदा प्रसन्न चित्त रहता है। प्रसन्न चित्त वाले साधक की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर परमात्मा के स्मरण में पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 66-68 :- जिसको तत्वदर्शी संत नहीं मिला, वह परमात्मा के स्मरण में स्थिर नहीं हो सकता क्योंकि उसका मन वश नहीं है। उस अयुक्त यानि परमात्मा पर न टिके मन वाले पुरूष में बुद्धि स्थिर नहीं होती और उस अयुक्त यानि परमात्मा में दढ़ता से न लगे अभक्त के अंदर भक्ति भाव नहीं होता और बिना भाव के व्यक्ति को परमात्मा के स्मरण से मिलने वाली शांति नहीं मिलती। अशांत मनुष्य को सुख कैसे हो सकता है? अर्थात् वह कभी सुखी नहीं हो सकता।*

❖ *क्योंकि पूर्ण संत रूपी खेवट नाव के साथ नहीं है तो उस नाव को जल में वायु हर लेती है यानि अपनी इच्छा अनुसार भटकाती है। वैसे ही पूर्ण संत के अभाव से तत्वज्ञान न होने से जल में नाव की भाँति विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्री के साथ लगा है, वह एक ही इन्द्रिय उस अभक्त की बुद्धि को हर लेती है।*

❖ *इसलिए हे महाबाहो! जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों यानि विकारों (काम, क्रोध, मोह, लोभ) से सब प्रकार से निग्रह की हुई है यानि पूर्ण से संयमित है। उसी की बुद्धि स्थिर है।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 55 से 68 में कहा है कि जब भक्त (योगी) इच्छाओं से रहित हो कर भाग्य पर संतुष्ट हैं, उस समय वह स्थिर बुद्धि वाला है। दुःख-सुख को बराबर समझता है व राग-द्वेष से रहित होता है। जिसने इन्द्रियों का दमन कर लिया है। क्योंकि बुरे विचारों से इच्छाऐं (कामना) उत्पन्न होती हैं फिर क्रोध से अज्ञान और अज्ञान से अहंकार, फिर ज्ञान नष्ट हो जाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है इसके बाद पतन निश्चित है। जो तत्वज्ञानी योग युक्त है वह शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म करता हुआ भी इन्द्रियों के वश नहीं होता। जल्दी ही स्थिर बुद्धि हो जाती है और उसके सर्व दुःखों का अंत हो जाता है। जब तक प्राणी निःइच्छा नहीं होता तब तक सुख कैसा? इन्द्रियाँ मन को ऐसे विवश कर लेती हैं जैसे पानी में नौका वायु के वश हो जाती है अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ वश हैं उनकी बुद्धि स्थिर जान।*

पाठकजनों! उपरोक्त स्थिति तत्वदर्शी संत से दीक्षा लेकर ही प्राप्त हो सकती है। तत्वदर्शी संत तत्वज्ञान यानि सूक्ष्मवेद से सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण भक्ति विधि बताता है। उसके अभाव से चारों वेदों में वर्णित ज्ञान व साधना से उपरोक्त स्थिति यानि स्थिर बुद्धि नहीं हो सकती, विकार नहीं मरते। यही कारण रहा कि ऋषि वेदों अनुसार साधना करके भी काम, क्रोध, अहंकार आदि के वश ही रहे। उदाहरण रूप में निम्न कथाऐं :-

।। वेदों में वर्णित साधना विधि से विकार नहीं मरते।।

एक समय एक चुणक नामक ऋषि वेदों तथा गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 55 से 68 तक वर्णित साधना विधि के (मतानुसार) अनुसार अपने मन व इन्द्रियों को काबू करके कई हजार वर्षों तक साधना करता रहा। उस समय वे महायोगी माने जाते थे। बहुत मंदुभाषी, दुःख-सुख में एक रस रहने वाले तथा केवल एक लंगोटी (कोपीन) व एक झोंपड़ी (कुटिया) में रहा करते थे। जो मिल जाता उसी में संतुष्ट रहते थे। पूर्ण सिद्धि युक्त महापुरुष माने जाते थे।

एक मानधाता चकवै (चक्रवर्ती) राजा था। (चक्रवर्ती राजा उसे कहते हैं जिसका सम्पूर्ण पथ्वी पर राज्य हो)। मानधाता के मन में आई कि देखना चाहिए कि कोई छोटा राजा मेरे सामने सिर उठाने वाला तो नहीं हो गया है। इसके लिए राजा ने एक घोड़ा छोड़ा, जिसके गले में एक लकड़ी का बोर्ड (फट्टी) लटकाया जिस पर यह लिख दिया कि यह घोड़ा राजा मानधाता चकवै (चक्रवर्ती) का है। जिस किसी राजा को महाराजा मानधाता की आधीनता स्वीकार नहीं है वह इस घोड़े को पकड़ कर बाँध ले उसको राजा के साथ युद्ध करना पड़ेगा। साथ में सैकड़ों सैनिक भी अन्य घोड़ों पर सवार हो कर उस घोड़े के साथ-2 चल दिए। घोड़ा सारी पथ्वी पर घूमकर वापिस आ रहा था किसी ने उस घोड़े को पकड़ने का साहस नहीं किया। चूंकि राजा मानधाता के पास 72 क्षौहिणी (एक करोड़ 56 लाख 96 हजार) सेना थी। जब वे सैनिक तथा वही घोड़ा परम ऋषि चुणक के पास से निकलने लगे तो ऋषि ने सैनिकों से पूछा कि - कौन हो? कहाँ से आए हो और कहाँ जा रहे हो? यह खाली घोड़ा किस लिए है। इस पर कोई सवार क्यों नहीं? कप्या बतलाईए। अभिमानी राजा के अभिमानी सैनिकों ने कहा तेरे मतलब की बात नहीं है। ऋषि जी बोले - राह-रस्ते व आने-जाने वालों से पूछ ही लिया करते हैं। बताईए क्या माजरा है? सैनिक कहने लगे यह राजा मानधाता चक्रवर्ती (चकवै) का घोड़ा है। इसको जो कोई पकड़ लेगा उसे राजा से युद्ध करना होगा। ऋषि ने पूछा क्या किसी ने नहीं पकड़ा? कुछ सैनिकों ने कहा कि सारी पथ्वी पर किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी इसे पकड़ने की। कुछ दूसरों ने कहा कि कोई कैसे पकड़ेगा? राजा के पास 72 क्षोहिणी सेना है। चुणक ऋषि ने कहा कि यदि किसी ने भी नहीं बाँधा तो मैं बाँध लेता हूँ। यह कहते ही सैनिकों ने वह घोड़ा उसी वक्ष से बाँध दिया जिसके नीचे ऋषि की कुटिया थी और कहा कि रे कंगाल, तेरे पास खाने के लिए तो अन्न (दाने) भी नहीं है और युद्ध करेगा राजा मानधाता चकवै से? क्यों तेरी सामत आई है। ऋषि बोला मेरे भाग्य में ऐसा ही है। जाओ कह दो अपने राजा से कि ऋषि युद्ध के लिए तैयार है। जब सैनिकों ने राजा से बताया कि आपका घोड़ा चुणक नाम के ऋषि ने बाँध लिया है और युद्ध के लिए तैयार है। राजा ने एक व्यक्ति को मारने के लिए 18 क्षौहिणी सेना भेजी। ऐसे अपनी सेना की 18-18 क्षौहिणी की चार टुकड़ियाँ बनाई। उधर चुणक ऋषि ने अपनी ब्रह्म (काल) साधना से प्राप्त सिद्धि से चार पुतलियाँ बनाई। ऋषि ने एक पुतली राजा की सेना पर छोड़ी जिसने 18 क्षौहिणी सेना को समाप्त कर दिया। ऐसे चारों पुतलियों ने 72 क्षौहिणी सेना का सर्व नाश कर दिया। (नोट :- एक क्षौहिणी में लगभग दो लाख अठारह हजार सैनिक होते हैं जिनमें से कुछ पैदल सैनिक, कुछ घोड़ों पर सवार, कुछ हाथियों पर सवार, कुछ स्थों पर सवार होते हैं।)

पूर्ण ब्रह्म की साधना के अतिरिक्त परब्रह्म, ब्रह्म, अन्य श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी देवताओं व अन्य देवी देवताओं की पूजा से जैसा कर्म किया है वैसा ही फल मिलता है,

पुण्य भोग स्वर्ग में तथा पाप भोग नरक में तथा चौरासी लाख प्राणियों के शरीर में भी यातना सहनी पड़ती है। महर्षि चुणक जी ब्रह्म (काल) उपासक थे तथा वेदों में वर्णित विधि अनुसार साधना की। जिस कारण से पुण्यों का भोग महास्वर्ग (जो ब्रह्म लोक में बना है) में भोग कर पाप कर्मों का फल नरक तथा फिर पशु आदि के शरीर में भोगना पड़ेगा। जब यह चुणक ऋषि कुत्ता आदि बनेगा तो इसके सिर में जख्म होगा तथा कीड़े चलेंगे। जितने सैनिकों का वध वचन रूपी तीर से किया था वह अपना प्रतिशोध लेंगे। इसी लिए पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में स्वयं गीता जी को बोलने वाला ब्रह्म (काल) ने कहा है कि ये ज्ञानी आत्मा उदार हैं जिनको वेद पढकर यह ज्ञान तो हो गया कि एक प्रभु की भक्ति से पूर्ण मोक्ष होगा परंतु तत्वदर्शी संत न मिलने से स्वयं निकाले निष्कर्ष के आधार पर कि ओ३म् नाम का जाप तथा पाँचों यज्ञ तथा घोर तप ही पूर्ण ब्रह्म की साधना मान ली। परंतु यह साधना केवल काल ब्रह्म तक की है। पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म) की साधना तो तत्वदर्शी संत ही बताएगा (गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13 में)। इसलिए वे उदार ज्ञानी आत्मा मेरी (ब्रह्म-काल कह रहा है) अति अश्रेष्ठ (अनुत्तमाम्) गति (मुक्ति) में ही आश्रित रही। विशेष :- अब पाठक वन्द स्वयं विचार करें कि इतने अच्छे साधक दिखाई देने वाले ऋषि को क्या उपलब्धि हुई?

क्योंकि वेदों व गीता जी में ज्ञान तो श्रेष्ठ है कि जो साधक काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, राग-द्वेष रहित हो जाता है वही पूर्ण मुक्त है। परंतु भक्ति की साधना केवल काल (ब्रह्म) प्राप्ति की है जिससे विकार रहित नहीं हो सकता। उस परमात्मा को प्राप्त होने योग्य ''मन्त्र के जाप से हो सकता है। वह किसी शास्त्र में नहीं है। वह मन्त्र केवल साहेब कबीर का पूर्ण संत ही बता सकता है। लाभ भी उसी संत से नाम लेने से होगा जिसे उपदेश देने का आदेश प्राप्त हो। फिर सारा जीवन गुरु मर्यादा में रह कर भक्ति करता हुआ सार नाम की प्राप्ति गुरु जी से करें। तब साधक सतलोक जा सकता है तथा विषयों (विकारों) को त्याग सकता है।

विशेष : ऋषि चुणक एक उदार ज्ञानी आत्मा परमात्मा को चाहने वाले थे। जैसा मार्गदर्शन अपने आप निष्कर्ष निकालने से शास्त्रों से हुआ तथा जैसा गुरु मिला उसके आधार पर वेदों में वर्णित मतानुसार हजारों वर्ष साधना की। फिर भी अभिमान (अहंकार) नहीं गया। मानधाता राजा का सर्वनाश किया तथा अपनी भक्ति की कमाई कम की और पाप के भागी बने। यह ब्रह्म साधना की घटिया गति (स्थिति) है। जिसका प्रमाण स्वयं ब्रह्म भगवान देते हैं (गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में)। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

गरीब, बहतर क्षौणी खा गया, चुणक ऋषिश्वर एक। देह धारें जौरा फिरैं, सभी काल के भेख।।

भावार्थ :- चुणक ऋषि काल ब्रह्म की साधना से काल रूप हो गया। सिद्धियाँ प्राप्त की। उससे बहत्तर क्षौहिणी यानि एक करोड़ *56* लाख *96* हजार सैनिकों को खा गया अर्थात् मार डाले। ये सिद्धि प्राप्त ऋषि मानव शरीर में जौरा यानि चलती-फिरती मत्यु हैं। ये सब भेष यानि पंथ काल प्रेरित हैं। काल ब्रह्म इनको भ्रमित किए है।

जैसे गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 2 में कहा है कि मेरी भक्ति वेदों व गीता में वर्णित विधि से करता है वह मेरे भाव में ही भावित रहता है तथा मेरे जैसे गुणों वाला अर्थात् काल का दूसरा रूप हो जाता है जैसे चुणक ऋषि। पुनर् जन्म जब मानव का होता है तो वह साधक उसी भाव में भावित रहता है अर्थात् अन्य देवों की उपासना नहीं करता, फिर भी वेदों अनुसार मेरी साधना करता है। यह भी बहुत जन्मों के उपरान्त मेरी साधना पर लगता है, यही संकेत गीता

अध्याय 7 श्लोक 19 में भी दिया है कि बहुत जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् कोई ज्ञानी आत्मा जो पहले मेरे भाव में भावित था, मेरी साधना करता है और यह बताने वाला कि पूर्ण परमात्मा ही वासुदेव है अर्थात् सर्वव्यापक सर्व का पालन कर्त्ता वही पूजा के योग्य है, वह महात्मा तो अति दुर्लभ है।

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 69-72 का अनुवाद :- श्लोक 69 में कहा है कि रात्रि में दो प्रकार के व्यक्ति जागते हैं। एक तो संसारिक भोगों की इच्छा वाला सोते हुए भी स्वपन में उन्हीं में भटकता रहता है। दूसरा परमात्मा की भक्ति में लगा स्थिर बुद्धि वाला साधक रात्रि में स्वपन में भी परमात्मा का विचार रखता है।*

भावार्थ :- जो संसारिक व्यक्ति भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए दिनभर भटकता है। संयमी साधक की इच्छा उन पदार्थों की नहीं होती। उसके लिए वह दिन भी रात्रि के समान है। अन्य लोग तो संसारिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए सजग रहते हैं, परंतु स्थिर बुद्धि वाला उनसे मुख मोड़े रहता है। वह रात्रि में सोने के तुल्य विकारों से परे है, वह सोया हुआ है।

❖ *श्लोक 70 :- तत्वज्ञान से परिचित स्थिर बुद्धि वाले का विश्वास ऐसा अचल होता है जैसे जल से पूर्ण रूप से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में अनेकों नदियाँ समा जाती हैं। उनसे समुद्र विचलित नहीं होता। वैसे ही स्थिर बुद्धि वाले में भोग समा जाते हैं यानि गहस्थी साधक संतान उत्पत्ति भी करता है, परंतु अन्य स्त्रियों को माता, बहन-बेटी की दृष्टि से देखता है। अपने धर्म से गिरता नहीं। उसमें सब भोग समा जाते हैं। वही साधक शांति को प्राप्त हो जाता है। भोग-विलास में लिप्त साधक शांति नहीं प्राप्त कर सकता।*

❖ *श्लोक 71 :- जो पवित्रात्मा सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता रहित, अहंका रहित और स्पृहा रहित यानि इच्छा रहित जीवन यापन करता है, वह शांति को प्राप्त होता है।*

❖ *श्लोक 72 :- हे अर्जुन! यह उपरोक्त स्थिति परमात्मा प्राप्त साधक की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त साधक अंत समय तक अज्ञानवश नहीं होता। अंत काल में भी इसी स्थिति में रहकर (ब्रह्म निर्वाणम् ऋच्छति) उस परमेश्वर के धाम को प्राप्त होता है।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 69 से 72 में लिखा है कि रात्रि में दो प्रकार के प्राणी जागते हैं। एक विषयों का प्रेमी [काम (सैक्स) वश, चोर या ज्यादा धन इक्ट्ठा करने वाला] यानि विकारों में लीन जागता है। उसके लिए वह रात ही दिन के समान है। दूसरा परमात्मा प्रेमी जागता है। उसने उस रात का पूरा लाभ लिया। जैसे सर्व नदियाँ समुद्र में स्वतः गिर जाती हैं ऐसे ही दोनों प्रकार के प्राणी अपने बुरे व अच्छे कर्मों के आधार पर नरक तथा स्वर्ग में स्वतः चले जाते हैं। जो व्यक्ति परमात्म तत्व को जान चुका है वह विषय वासनाओं से रहित सुख-दुःख व लाभ-हानि में समान रहता है। जैसे समुद्र में नदियां गिर कर भी समुद्र को विचलित नहीं करती। इस प्रकार वह व्यक्ति सर्व इच्छा ममता व अहंकार रहित होकर ही शांति को प्राप्त होता है। जो साधक विषय विकार रहित होकर मन वश करके इन्द्रियों का दमन करे व काम क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार को समाप्त करके अन्तिम समय (मत्यु बेला) में भी विचलित नहीं होता, केवल वही प्राणी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा-पूर्ण ब्रह्म) को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा क्षमता रहित होने से पूर्ण परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।*

सार : यह क्षमता न विष्णु में, न ब्रह्मा में, न शिव में। फिर परमात्मा प्राप्ति असम्भव।

।। ब्रह्मा से मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ।।

ब्रह्मा की कहानी सुनो :-ब्रह्मा जी बहुत ही विद्वान् देव हैं। चारों वेदों के ज्ञाता माने जाते हैं

तथा ब्रह्मापुरी में देवताओं को ज्ञान सुनाया करते हैं।

एक दिन बहुत से नौजवान देव ब्रह्मा जी की सभा में ज्ञान सुनने हेतु आए हुए थे। ब्रह्मा जी कह रहे थे कि देवताओं हमारा सबसे पहला दुश्मन कामदेव (सैक्स) है। इससे बचने के लिए एक मात्र उपाय है कि दूसरे की पत्नी को माँ समान व पुत्री को बेटी समान समझें। यदि कोई ऐसा विचार नहीं रखता है तो वह नीच आत्मा है। उसके दर्शन भी अशुभ होते हैं आदि-आदि। ब्रह्मा जी की पुत्री सरस्वती जो कुंवारी थी को अपनी माता जी से गृहस्थ का ज्ञान हुआ कि जवान लड़की ने शादी करके अपना घर बसाना चाहिए। नहीं तो स्त्री का आदर कम हो जाता है। इस बात को सुनकर सरस्वती हम उम्र सहेलियों (देव स्त्रियों) के पास गई। उसने उनको माता द्वारा शादी करने का वृत्तांत सुनाया। तब सभी ने मिल कर कहा कि सरस्वती जवानी ढल जाने के बाद आपको कोई देव स्वीकार नहीं करेगा। शादी के आनन्द से वंचित रहकर मानव शरीर का कोई लाभ नहीं है। अन्य बहुत अश्लील बातों से सरस्वती में पति प्राप्ति की प्रबल इच्छा प्रेरित की। साथ में कहा कि आज सुअवसर है कि सर्वदेव आपके पिता के दरबार में आए हुए हैं। अपना पति चुन ले। यह बात सुनकर सरस्वती (ब्रह्मा की पुत्री) स्नान आदि करके, हार सिंगार (श्रंगार) करके सुन्दर वस्त्र पहन कर पति प्राप्ति के लिए ब्रह्मा जी की सभा में गई। सर्व देवों को विशेष अदा के साथ देखती हुई चली। उसी समय ब्रह्मा जी अपनी पुत्री के यौवन को देखकर ज्ञान-ध्यान भूलकर अपनी बेटी पर मोहित होकर आसन छोड़कर कामवासना वश होकर सरस्वती की कौली (बाथ भरना - दोनों भुजाओं से दबोच लेना) भर ली। वासना विकार वश होकर दुष्कर्म पर उतारू हुआ ही था कि इतने में भगवान शिव ने ब्रह्मा जी के शिर पर थाप (थप्पड़) मारी और कहा क्या कर रहे हो? ऐसा अपराध! ब्रह्मा यह शरीर त्याग दे नहीं तो कुत्ते की जूनी में जाएगा। उसी समय ब्रह्मा जी योग ध्यान में आया। शरीर त्याग दिया। दुर्गा ने वचन शक्ति से उसी आत्मा को अन्य शरीर में प्रवेश कर दिया जो उसी आयु का शरीर था जो वर्तमान में ब्रह्मा रूप में विराजमान है। अब पाठकजन स्वयं विचार करें फिर आम (साधारण) जीव कैसे ज्ञान योगयुक्त व वासना विकार रहित हो सकता है। यह सब काल (महाविष्णु, ज्योति निरंजन) का जाल है। आदरणीय गरीबदास साहेबजी महाराज कहते हैं :-

गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं हाथ। पंथी डोबन उतरे, कह–2 मीठी बात।।
कहन सुनन की करते बाता। कोई न देखा अमंत खाता।। ब्रह्मा पुत्री देख कर, हो गए डामा डोल।।

भावार्थ :- वेदों व गीता के श्लोकों को कंठस्थ करके उच्चारण करके भक्ति मार्ग बताते हैं, परंतु बीजक यानि वेदों व गीता के यथार्थ अर्थ तथा भावार्थ का ज्ञान नहीं है। ये कथित विद्वान बनकर पंथी के सब मानवों को शास्त्रों के विपरित गलत ज्ञान बताकर जीवन नष्ट करने के लिए जन्में हैं। ये केवल बातें बनाते हैं कि हमने परमात्मा प्राप्त कर लिया है, बड़ा आनंद आ रहा है। इन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं है। ब्रह्मा जी कितनी बातें बना रहे थे। अपनी ही पुत्री को देखकर डगमग हो गए। तत्वदर्शी संत से ज्ञान समझकर सत्य साधना से सर्व विकार सामान्य हो जाते हैं और मोक्ष भी मिलता है।

❑❑❑